ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBBIL04292
RNI REG. NO. UPBBIL/2014/66218 PP. NO.- 301-304
ISSN NO.-2347-2944
Vol.-10, No.-I, Issues-11 YEAR- June -2019

प्रातिशाख्य ग्रन्थों तथा भाषा विज्ञान में साम विचार का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ0 विनीता सिंह
एसो0 प्रो0– संस्कृत विभाग, कन्या महाविद्यालय आर्य समाज भूड़, बरेली (उ0प्र0), भारत

Received- 09.05.2019, Revised- 12.05.2019, Accepted - 17.05.2019 E-mail: -vinita1963singh@gmail.com

सारांश : *उच्चारण के दोषों से रहित तथा माधुर्यादि गुणों के साथ सामंजस्य पूर्ण रीति से शब्दों का उच्चारण 'साम' है। विभिन्न प्राणियों में उच्चारणवृत्ति की भिन्नता, उच्चारणगति, की विषमता अथवा लयभिन्नता का होना अति स्वाभाविक है। अज्ञानतावष मंत्रोच्चारण में विलम्बता या शीघ्रता से अनर्थ की व्यक्ति संभव है। अतः आचार्यों ने उच्चारण विधि को स्पष्ट करते हुए उच्चारण में संभावित दोषों को दूर करने का उपदेश दिया है तथा गुणों से युक्त उच्चारण की प्रेरणा दी है। उच्चारण प्रक्रिया उच्चारणावयव आदि का परिचय प्रस्तुत करते हुए शिक्षाकारों ने उच्चारण विधि या नियम प्रदर्शित किए हैं। इसे शिक्षा ग्रंथो में 'साम' अभिधान प्रदान किया गया है। शिक्षा ग्रन्थों के विषयों को प्रतिशाख्यों में अधिक विस्तार प्राप्त हुआ। प्रातिशाख्यों में 'साम' परिभाषा के अंतर्गत आने वाले विषयों–उच्चारण के लिए प्रयुक्त–अवयवों, वृत्तियां तथा उच्चारण के गुण–दोष आदि की विवेचना की गई है। आधुनिक भाषा विज्ञान की अनेक धाराओं में ध्वनि की जिस प्रमुख धारा का विज्ञान विकसित हुआ उसका प्रतिपाद्य प्राचीन ग्रंथों व प्रातिशाख्यों से उपलब्ध, हुआ है।*

कुंजीभूत शब्द– माधुर्यादि, सामंजस्य, उच्चारणवृत्ति, विषमता, लयभिन्नता, स्वाभाविक, अज्ञानतावष।

प्रातिशाख्य ग्रंथ और साम विचार– वेद मंत्रों की सार्थकता व सिद्धि के लिए वर्णो के स्वरूप, संख्या, बल, स्थान व परिवर्तन नियमों के साथ वर्णोच्चारण प्रक्रिया के ज्ञान का विशेष महत्व है। उच्चारण अर्थात् ध्वनि प्रभाव से ही अभीष्ट सिद्धि संभव होती है। वर्णो के बाह्य स्वरूप तथा सूक्ष्म विश्लेषण के लिए शिक्षा ग्रन्थों और प्रातिशाख्य ग्रंथो में पर्याप्त सामग्री है। वर्णो की सूक्ष्म वैज्ञानिक जानकारी के साथ वर्णोच्चारण की शुद्धता पर ही मंत्र सिद्धि हो सकती है अतः वेदों के स्वरूप को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए इन ग्रन्थों में स्थान स्थान पर उच्चारण नियमों का भी सूक्ष्म आकलन प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार प्रातिशाख्य ग्रन्थों ने वर्णो की संख्या, मात्रा, प्रयत्न तथा सन्धि नियमों के सिद्धान्तों की पर्याप्त सामग्री प्रदान करने के साथ–साथ उच्चारण नियम सम्बन्धी व्यवहार पक्ष को भी उद्धृत किया है। पूर्वकाल में गुरु मुख से श्रवण करके शिष्य वेद पद्धति को अक्षुण्ण रखता था। काल क्रम अथवा किसी अन्य व्यवधानवश मंत्रोच्चारण में भिन्नता न आ जाए इसके लिए आचार्यों ने उच्चारण नियमों का विधान यथा संभव किया है । प्राचीन ऋषियों के द्वारा वर्णो के उच्चारण में शारीरिक अन्तःक्रिया से लेकर अर्थ स्फोट तक की वैज्ञानिक क्रिया का विवेचन किया गया है । इसके साथ ही वेदपाठी गुरु शिष्य की योग्यता, गुण, दोष, वेदाध्ययन के पौर्वापर्य नियमों, अनध्याय नियमों आदि की सम्यक् जानकारी दी गई है। यह समस्त वर्ण्य "साम" नाम से जाना जाता है।

उच्चारण स्थान– प्रातिशाख्य काल में उच्चारण विज्ञान पूर्ण प्रतिष्ठा को प्राप्त हो चुका था । यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि प्रातिशाख्यों की उत्कृष्टता उच्चारण विज्ञान की प्रतिष्ठा से ही थी। ध्वनि विज्ञान विषयक जिन तत्वों का प्रस्फुरण ऋक् प्रातिशाख्य में हुआ है, आधुनिक ध्वनि वैज्ञानिकों ने उसे यथावत् स्वीकार किया है। ऋक् प्रातिशाख्य में वाणी के तीन स्थान कहे गए हैं – मन्द्र, मध्यम और उत्तम। "त्रीणि मन्द्रं मध्यममुत्तमं च स्थानान्याहुः सप्तयमानि वाचः। (1)।" तैत्तिरीय प्रतिशाख्य में वाणी के सात स्थान कहे हैं – उपांशु, ध्वान, निमद, उपब्दिमद, मन्द्र, मध्यम, तार । वाचिक चेष्टा के साथ ध्वनि रहित उच्चारण 'उपांशु' है (2)। अस्फुट ध्वनि, जिसमें स्वर तथा व्यंजनों की उपलब्धि नहीं होती वह उच्चारण 'ध्वान' है (3)। 'स्वर व्यंजन' की उपलब्धि कराने वाली वाणी 'निमद' है। उच्च शब्द के साथ उच्चारण 'उपब्दिमद्' है। (4)

मन्द्र, मध्यम और तार की ध्वनियां कमशः ह्रदय, कण्ठ और सिर में उत्पन्न होती हैं (5)। तैत्तिरीय प्रातिशाख्य में ऋकप्रातिशाख्य द्वारा बताए गए वाग्स्थानों का विस्तार किया गया है । अन्य प्रातिशाख्यों में इनका प्रयोग नहीं किया गया है।

उच्चारण प्रकिया– ऋक् प्रातिशाख्य में वर्णो की उच्चारण प्रक्रिया अति स्पष्ट है । ऋक् प्रातिशाख्यके उव्वट भाश्य में उद्धृत किया गया है – "वायुः प्राणः कोष्टमनुप्रदानं कण्ठस्यखे विवृते संवृते वा। आपद्यते श्वासतां नादतां वा वक्त्रीहायाम् । (6)।।" इसके अनुसार वायु की सहायता से

ISSN NO.-2347-2944
Vol.-10, No.-I, Issues-11 YEAR- June -2019

ध्वनि करते हुए वर्णो की उत्पत्ति होती है। वायु के दो प्रकार हैं – वायुमंडल से एक वायु ग्रहण करके मुख व नासिका से वक्ष तक लाई जाती है। द्वितीय वायु वक्ष से नासिका द्वारा बाहर निकाली जाती है। यह द्वितीय वायु वर्ण की उत्पत्ति करती है। ऋक्तंत्र में अतिस्पष्ट रूप से शब्दोत्पत्ति की प्रक्रिया को स्पष्ट किया गया है – "अथ वाचो वृत्तिं व्याख्यास्यामः। वायुं प्रकृतिमाचार्याः। वायुमूर्छन् श्वासी भवति। श्वासो नाद इति शाकटायनः। वायुरयमस्मिन् काये मूर्छत्यंटतीन्येषोऽर्थः। स खलु खविशेषं प्रतिपन्नः, कण्ठं प्रतिपन्नः आकाशमद्वारकं नदतिर्भवति। तस्य इदानीं नदते जिह्वाग्रेण चर्यमाणस्य व्यक्तयः प्रादुर्भवन्ति। वर्णानामौष्ठ्याः, कण्ठ्याः, तालव्याः, मूर्धन्याः, दन्त्याः, नासिक्याः, जिह्वामूलीया इति। कांचिमणिके रूचकः स्वस्तिक इत्येवं यं यमयं खविशेषं जिह्वाग्रेण स्पृशति ततस्ततो वर्णानां व्यक्तिर्भवति, ओष्ठ्याना, कंठ्याना, दंत्याना, नासिक्यानाम्, जिह्वामूलीयामामिति । एवं उत्पन्नानां वर्णानां उपदेशोद्देशाः (7)।"

उच्चारणावयव– ऋक् प्रातिशाख्य में भाष्यकार ने श्वास और नाद को अनुप्रदान अर्थात् बाहय प्रयत्न स्वीकार करते हुए (8) श्वास और नाद में प्रयुज्यमान उच्चारणावयवों की भूमिका स्वीकार की है । इस प्रकार वाणी की चेष्टा में वायु 'कण्ठबिल' में श्वासत्व प्राप्त करती है अर्थात् उच्चारण समय में 'स्वर यंत्र' (झिल्ली द्वय) के खुलने पर वायु निकलती है यह वायु 'श्वास' है। 'श्वास' अघोष ध्वनियों का उच्चारण कराता है।

'स्वर तंत्र' जब परस्पर समीप आते हैं तब वायु घर्षण के साथ बाहर निकलती है और 'कम्पन' होता है। यह वायु 'नाद' है। 'नाद' सघोष ध्वनियों का उच्चारण कराता है। इस प्रकार अन्य प्रातिशाख्यों में भी उच्चारणावयवों का पृथक् रूपेण विश्लेषण न करते हुए भी घोष, अघोष, नाद तथा श्वास का व्यवहार करके वायुनली, कण्ठ, स्वरयन्त्र, वक्ष तथा नासिका आदि अवयवों की भूमिका स्वीकार की है।

उच्चारण विधि– ऋक् प्रातिशाख्य (14/1) में ऋग्वेद मत्रों के यथोचित उच्चारण का सूक्ष्मतम अवलोकन प्रस्तुत किया गया है। उच्चारण प्रक्रिया में दोषाभाव रहे इस हेतु दोषों का परिगणन करके उन्हें परिभाषित भी किया है ताकि प्रयोगकर्ता अज्ञानवश दोषपूर्ण उच्चारण न करे। आय अपाय व व्यथन ये तीन उच्चारण दोष कहे गए हैं। ऋक् प्रातिशाख्य में उच्चारण गुणों का पृथक विश्लेषण नहीं किया गया है । अतः स्पष्ट है कि दोषरहित उच्चारण ही गुणयुक्त उच्चारण है ।

वृत्ति विभाग विचार– ऋक्प्रातिशाख्य में आचार्यों द्वारा तीन वृत्तियों का स्वीकार किया जाना उद्धृत किया गया है । वे वृत्तियां तिस्त्रो वृत्तीरूपदिशन्ति वाचो विलम्बितां मध्यमांच द्रुतां च (9)।" तै0 प्रा0 में उदात्तादि स्वरों के उच्चारण के प्रसंग में द्रुत और विलम्बित वृत्ति का उल्लेख किया गया है परन्तु उनका विधान नहीं किया गया है। "तस्मिन् द्वियमाऽन्तरावृत्तिः। "क्रमविक्रमसम्पन्नाम् द्रुतामविलम्बिताम् । नीचोच्चस्वार सम्पन्ना वदेद्धृतवतीं समाम् । (10) ऋक् तंत्र में द्रुत, मध्यम और विलम्बित वृत्तियों को स्वीकार किया गया है। "द्रुतायां मात्रा। चतुष्कला मध्यमायाम् । पंचकला विलम्बितायाम्। (11)।।"ऋक् प्रातिशाख्य में उत्तरोत्तर वृत्ति में मात्राधिक्य का निर्देश किया गया है किन्तु कितनी मात्रा अधिक होती है इसका निर्देश नहीं किया गया । ऋक् प्रातिशाख्य के भाष्यकार उव्वट ने इस विषय में इस प्रकार कहा है कि द्रुत' वृत्ति की अपेक्षा 'मध्यम' वृत्ति तिहाई भाग अधिक तथा मध्यम वृत्ति की अपेक्षा 'विलम्बित' वृत्ति तिहाई भाग अधिक होती है। द्रुतायां वृत्तौ ये वर्णास्ते मध्यमायां त्रिभागाधिका भवन्ति। तथा मध्यमायां ये वर्णास्ते विलम्बितायां त्रिभागाधिकाधिका भवन्ति। (12)।" ऋक् प्रातिशाख्य में भाष्यकार द्वारा द्रुत वृत्ति अभ्यास के लिए, मध्यम वृत्ति कर्मानुष्ठान के लिए तथा विलम्बित वृत्ति शिष्यों को उपदेश देने के लिए उपयुक्त कही गई है। "विलम्बितां बालानामध्यापनादिषूपदिशन्ति। मध्यमा व्यवहारादिषूपदिशन्ति। द्रुतां अध्ययनस्य बहुरूपाभ्यास उपदिशन्ति। (13)।"

उच्चारण में दोष एवं गुण विवेचन– उच्चारण सम्बन्धी दोषों का विधान केवल ऋक् प्रातिशाख्य में ही किया गया है । ऋक् प्रातिशाख्य के चौदहवें पटल में वर्ण विषयक दोषों का परिगणन किया गया है । इसके अनुसार समग्र दोषों की संख्या 22 है । वे इस प्रकार हैं –

आय – अविद्यमान वर्ण का आगम ।

अपाय – विद्यमान वर्ण का लोप ।

व्यथन– विद्यमान का अन्य प्रकार से उच्चारण करना ।

निरस्त– वर्ण का उच्चारण स्थान तथा करण से अप.ष्ट हो जाना ।

व्यास– वर्ण का उच्चारण स्थान के साथ–साथ समीपवर्ती उच्चारण स्थान से उच्चरित होना।

पीलन्– उच्चारण स्थान के संकोचन के कारण वर्ण ध्वनि का दब जाना ।

अम्बूकृत – दोनों ओष्ठों को समीप करके उच्चारण करना ।

शून– रिक्त मुख से वर्ण का उच्चारण किया जाना।

संदष्ट – जबड़ों को नीचा करके उच्चारण किया जाना ।

विक्लिष्ट – जबड़ों को दूर खींचकर उच्चारण किया जाना ।

ग्रस्त– कण्ठ्य स्वरों के उच्चारण में जिह्वा के

ISSN NO.-2347-2944
Vol.-10, No.-I, Issues-11 YEAR- June -2019

मूल को दबाना ।

अनुनासिक दोष – उच्चारण में नासिका का अनुगमन करना ।

विषमरागता – अनुनासिक स्वर को निरनुनासिक करना ।

लेश – उच्चारण के समय प्रयत्न की शिथिलता।

लोमश्य – उच्चारण में अस्पष्टता तथा रुक्षता ।

वेडन– ऊष्म वर्णो के उच्चारण में शीत्कार की अधिकता हो जाना ।

जिह्वा – प्रथम चार वर्गों के उच्चारण में जिह्वा का विस्तार।

अतिस्पर्श – रेफ के उच्चारण में उच्चारण स्थान का अति स्पर्श ।

बर्बरता– रेफ के उच्चारण में असुकुमारता या तोतलापन ।

श्वासदोष – हकारोच्चारण में श्वास का अधिक होना ।

अघोषनिभता – हकारोच्चारण में अघोष वर्ण का सा.श्य होना।

प्रतिहार – तवर्ग का उच्चारण करते समय जिह्वा का दांतों के साथ अधिक स्पर्श करना । ऋक् प्रातिशाख्य के चौदहवें पटल में तथा इन् सूत्रों के भाष्य में उबट के द्वारा इन उच्चारण दोषों की गणना की गई है (14)। ऋक् प्रातिशाख्य में दोषों से रहित उच्चारण के प्रति सतर्क रहते हुए संभावित दोषों का उल्लेख किया गया है । गुणों का पृथकरूपेण उल्लेख नहीं किया गया है । निर्दिष्ट नियम के साथ ध्वनि का दोषरहित उच्चारण ही उच्चारण गुण हो जाता है। ऋक् प्रातिशाख्य का प्रत्येक पटल ही उच्चारण गुणों की व्याख्या करता है । ऋक् प्रातिशाख्य में आचार्य शिष्य की योग्यता, वेदाध्येता के सामान्य नियम आदि विषयों का उल्लेख नहीं है । ऋचाओं के क्रमपाठ का नियम कहा गया है (15)। तैत्तिरीय प्रातिशाख्य में शिष्य की योग्यता के विषय में इस प्रकार कहा गया है – "गुरुत्वं लघुता साम्यं ह्रस्वदीर्घप्लुतानि च। लोपागमविकारांश्च प्र.ति विक्रमः क्रमः।। स्वरितोदात्तनीचत्वं श्वासो नादोगमेव च । एतत्सर्वं तु विज्ञेयं छन्दोभाषामधीयता । (16)।।" वाजसनेयी प्रातिशाख्य में अध्येता के नियमों का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि पादशुद्धि, आचमन के द्वारा पवित्र होकर पवित्र स्थान में सुखद आसन पर उचित ऋतु में रात्रि के चौथे प्रहर में अध्ययन करना चाहिए । अध्येता को मधुर भोजन करना चाहिए (17)। इसी प्रातिशाख्य में वेद के उच्चारण से पूर्व ओम् उच्चारण तथा भाष्य ग्रन्थों के उच्चारण से पूर्व अथ उच्चारण करना अनिवार्य कहा गया है। "ओंकारं वेदेषु । अथकार भाष्येषु । (18)।"

इस प्रकार प्रातिशाख्यों के साम संबंधी विचारों का उल्लेख संक्षेपतः प्रस्तुत किया गया। उक्त विशयों का आधार लेकर भाषा विज्ञान का उत्तरोत्तर विकास हुआ।।

भाषा विज्ञान में साम विचार– भाषा विज्ञान ध्वनि विज्ञान, पद विज्ञान, वाक्य विज्ञान तथा अर्थ विज्ञान को प्रमुख घटकों के रूप में स्थान देता है। षिक्षादि ग्रन्थ भाशागत ध्वनियों, पदों, वाक्यों और अर्थ का व्याकरणिक या व्युत्पत्तिपरक विश्लेषण करते हैं तथा भाषा विज्ञान निरन्तर प्रवहमान व परिवर्तनशील भाषागत ध्वनियों आदि को विषयीकृत करता है। इस क्रम में भाषा विज्ञान ध्वनि आदि में परिवर्तन व परिवर्तन के कारणों की व्याख्या भी करता है। चूंकि भाषा विज्ञान किसी स्थायी भाषा का विश्लेषण नहीं करता अतः भाषा विज्ञान उच्चारादि नियम, विधि तथा वृत्ति आदि के स्थायी नियम नियुक्त नहीं करता है अपितु भाषा के परिवर्तन का वैज्ञानिक विश्लेषण अवश्य करता है। डा0 बाबू राम सक्सेना कहते हैं–

"हमारा उच्चारण यंत्र इतना बढ़िया बना हुआ है कि हम सूक्ष्म भेद वाली अनेक ध्वनियों को बोल सकते हैं पर वे सुनने वाले को एक प्रतीत होंगी। कई तरह का क् अथवा कई तरह का प् बोला जा सकता है, जिसकी सूक्ष्मता की परख मनुष्य का कान अथवा कोई भी यंत्र नहीं कर सकता है। इस प्रकार व्यक्तियों की भाषा की विभिन्नता उच्चारण में रहती है। इसी तरह अर्थ सम्बन्धी विभिन्नता भी स्वाभाविक है क्योंकि अर्थ अनुभवजन्य है। वह स्मृति और अनुभव के संयोग में बदलता रहता है। इस प्रकार चाहे उच्चारण की परिस्थिति (भाषा के बाहय स्वरूप) अथवा अर्थ की परिस्थिति (भाषा के आन्तरिक स्वरूप) से देखा जाए, किन्ही भी दो व्यक्तियों की भाषा यथार्थ रूप से समान नहीं होती। किन्तु व्यक्तियों की यह भाषा विभिन्नता वैज्ञानिक विश्लेषण द्वारा ज्ञात होती है, व्यवहार में नहीं (19)।"

उक्त विचार से स्पष्ट होता है कि उच्चारणादि शब्द और अर्थ को प्रभावित करता है। आधुनिक भाषा शास्त्री हमारे पूर्वाचार्यों के द्वारा दर्शाए सिद्धान्तों को स्वीकार करके देशातीत भाषा नियमों को निबद्ध करने का उपक्रम करते हैं। जैसा कि काल निर्णय शिक्षा कहती है–

"स्वरवर्ण विरामाणां भिन्नवाग्वृत्तिवर्तिनाम्।
ऐक्यरूप्येण कालस्य कथनं नोपपद्यते।।"

भाषा मानवजनित है अतः वह सापेक्ष है किन्तु उच्चारणावयव प्रकृतिजनित है अतः प्रातिशाख्य ग्रन्थ उच्चारण हेतु विभिन्न ध्वनियों के जनक तथा सहयोगी अवयवों का सूक्ष्म विश्लेषण करते हैं, भाषा विज्ञान भी ध्वनि विज्ञान के निरूपण में उन अवयवों की व्याख्या करता है।

उच्चारणावयव एवं उच्चारण प्रक्रिया – भाषा विज्ञान का प्रमुख विवेच्य ध्वनि शास्त्र है। अतः

ISSN NO.-2347-2944
Vol.-10, No.-I, Issues-11 YEAR- June -2019

प्रायः सभी भाषा वैज्ञानिकों ने ध्वनि यन्त्र, उच्चारण अवयव उच्चारण प्रक्रिया का भी उल्लेख किया है। यह विषय शरीर विज्ञान से साक्षात् सम्बन्धित है। अतः मत साम्य या मतवैषम्य का विषय नहीं है। प्रारम्भ में भाषा विज्ञान व्याकरण के अवयव के रूप मे प्रचलित था अतः व्याकरण की सामग्री में ही ये विषय समाहित थे। प्राचीन ध्वनिविदों ने उच्चारण प्रक्रिया का अति सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत किया है। आधुनिक भाषाशास्त्री ध्वन्योत्पादन में इसी विश्लेषण का अनुकरण करते हैं। डा0 कपिलदेव द्विवेदी के अनुसार – अंदर से बाहर फेंकी गई वायु निःश्वास है। प्रकृति की विचित्रता यह है कि वह एक अत्यन्त अनावश्यक और अनुपयोगी तत्व 'निवास' से ध्वनि एवं भाषा जैसे बहुमूल्य तत्व को जन्म देती हैं। ज्यों ही यह वायु (निःश्वास) स्वरतन्त्रियों के मार्ग से अग्रसर होती है इसके अनेक स्वरूप हो जाते हैं। श्वास–नाद, घोष–अघोष, तार–मन्द्र, अल्पप्राण–महाप्राण आदि भेद स्वरतन्त्री की विशेष स्थितियों के कारण होते हैं। स्वरतन्त्री से आगे बढ़ने पर यह वायु आवश्यकतानुसार तीन भागों में विभक्त हो जाती है। 1. केवल मुख मार्ग से, 2. केवल नासिका मार्ग से, 3. मुख और नासिका दोनों मार्गों से समन्वित रूप में। जीभ, कंठ, तालु, दन्त, ओष्ठ आदि की सहायता से ध्वनि को इच्छानुसार रूप दिया जाता है। डा0 बाबूराम सक्सेना कहते हैं–

''जिस श्वास को हम बाहर फेंकते हैं उसी की विचित्र विकृति से ध्वनियों की सृष्टि होती है। श्वास नलिका के ऊपरी हिस्से मे स्वर यन्त्र है। स्वर यन्त्र स्वर तंत्रियों का समूह है। इसमें बहुत महीन–महीन तंत्रियां होती हैं (20)।''

डा0 सक्सेना आगे कहते हैं – ''इस प्रकार हमारे ध्वनियन्त्र में स्थान भेद और प्रयत्नभेद से अनंत ध्वनियों के उत्पादन की शक्ति है और प्रत्येक भाषा इन ध्वनियों की एक बहुत परिमित संख्या से ही अपना काम आसानी से चलाती है।

ध्वनि की इस प्रकार तीन अवस्थाएं हैं – उत्पत्ति, प्राप्ति और वहन। प्रथम और द्वितीय अवस्थाओं का अध्ययन ध्वनि विज्ञानी करता है और तृतीय का भौतिकविद् (21)। प्रो0 डोनियल जोन्स इस प्रकार कहते हैं–

''ध्वनि मनुष्य के विकल्पपरिहीन नियत स्थान और निश्चित प्रयत्न द्वारा उत्पादित और श्रोत्रेन्द्रिय द्वारा अविकल्प रूप से गृहीत शब्द लहरी है (22)।''

भाषा विज्ञान आचार्य व शिष्य के लिए उच्चारण योग्यता, नियम व गुण दोष की विवेचना नहीं करता है किन्तु भाषा में कालगत, स्थानगत परिवर्तनों के कारणों तथा प्रभाव का अध्ययन करता है। एक भाषा का दूसरी भाषा में संक्रमण या प्रभाव को भी अध्ययन का विषय बनाता है।

प्रातिशाख्यों में साम अर्थात् उच्चारण प्रक्रिया, उच्चारणावयव, उच्चारणवृत्ति, गुण दोष आदि का विवेचन प्राप्त होता है। प्राचीनकालिक ग्रन्थो से विषय सामग्री लेकर आधुनिक भाषा विज्ञान नामक पृथक विज्ञान विकसित हुआ। आधुनिक भाषा विज्ञान में अनेक धाराएं सामहित हुई किन्तु उसकी प्रमुख धारा ध्वनि विज्ञान प्राचीन ग्रन्थो की ऋणी है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. ऋक् प्रातिशाख्य – 13/41.
2. तैत्तिरीय प्रातिशाख्य – 23/6.
3. तैत्तिरीय प्रातिशाख्य – 23/7.
4. तैत्तिरीय प्रातिशाख्य – 23/8, 9.
5. तैत्तिरीय प्रातिशाख्य – 23/10.
6. ऋक् प्रातिशाख्य (उव्वट भाष्य) – 13/1.
7. ऋक् तंत्र (प्रथम प्रपाठक) –
8. ऋक् प्रातिशाख्य (उव्वट भाष्य) – 13/1.
9. ऋक् प्रातिशाख्य (उव्वट भाष्य) – 13/46.
10. तैत्तिरीय प्रातिशाख्य – 23/17, 20.
11. ऋक् तंत्र (31–33).
12. ऋक् प्रातिशाख्य (उव्वट भाष्य) – 13/47.
13. ऋक् प्रातिशाख्य (उव्वट भाष्य) – 13/46.
14. ऋक् प्रातिशाख्य (उव्वट भाष्य) – 14/1–43.
15. ऋक् प्रातिशाख्य (उव्वट भाष्य) – 10/1–2.
16. तैत्तिरीय प्रातिशाख्य – 24/5.
17. वाजसनेयि प्रातिशाख्य – 1/20–29.
18. वाजसनेयि प्रातिशाख्य – 1/18, 19.
19. सामान्य भाषा विज्ञान (डा0 बाबूराम सक्सेना) – पृ0 44.
20. सामान्य भाषा विज्ञान (डा0 बाबूराम सक्सेना) – पृ0 62, 63.
21. सामान्य भाषा विज्ञान (डा0 बाबूराम सक्सेना) – पृ0 66.
22. सामान्य भाषा विज्ञान (डा0 बाबूराम सक्सेना) – पृ0 66.

*****